

आदिकाल का नामकरण

हिंदी साहित्य के इतिहास के विवादास्पद प्रसंगों में एक हिंदी साहित्य के आदिकाल का भी प्रसंग रहा है। हिंदी साहित्य के इतिहास के अनेक विद्वान लेखकों ने इस संबंध में अपने-अपने मत प्रस्तुत किए हैं। हिंदी साहित्य के विधिवत् इतिहास लेखन से पूर्व 'भक्तमाल' 'चैरासी वैष्णव की वार्ता' 'दो सौ वैष्णव' की वार्ता' आदि कतिपय कविवृत संग्रह दो लिखे गए जिनमें काल-विभाजन और नामकरण की खोज की ओर कोई दृष्टि नहीं गई। कुछ विद्वान इसे वीरगाथात्मक रचनाओं की प्रधानता के कारण इसे वीरगाथाकाल कहने के पक्ष में है,लेकिन सिद्धों और नाथों की रचनाएँ इस परिधि में नहीं आ सकती। अतः 'वीरगाथाकाल' न कहकर कुछ ने इसे आदिकाल कहा है, तो किसी ने बीजवपन काल।

1. वीरगाथाकाल: आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रारम्भिक युग के साहित्य को दो कोटियों-अपभ्रंश और देशभाषा में बाँटा है। उनके मत में सिद्धों और योगियों की रचनाओं का जीवन की स्वाभाविक सरणियों, अनुभूतियों और दशाओं से कोई संबंध नहीं, वे साम्प्रदायिक शिक्षामात्रा हैं। अतः शुद्ध साहित्य की कोटि में नहीं आती और जो साहित्य की कोटि में गिनी जा सकी हैं वे कुछ फुटकर रचनाएँ हैं, जिनसे कोई विशेष प्रवृत्ति स्पष्ट नहीं होती है। उनके मत में तत्कालीन साहित्यिक रचनाओं में से केवल 'खुसरो की पहेलियाँ', 'विद्यापति पदावली' तथा 'बीसलदेवरासो' को छोड़कर सभी रचनाएँ वीरगाथात्मक हैं। इस युग में राज्याश्रित कवि अपने आश्रयदाता राजा की वीरता का यशोगान तथा उन्हें युद्धों के लिए उकसाने का काम करते थे। इसलिए उन रचनाओं को राजकीय पुस्तकालयों में रखा जाता था। लेकिन बाद में साहित्य संबंधी जो खोज की गई उसके अनुसार शुक्ल ने जिन रचनाओं के आधार पर इस काल का नाम 'वीरगाथाकाल' रखा है, उनमें से अधिकतर बाद की रचनाएँ हैं और कुछ सूचनामात्रा हैं। शुक्ल ने जिन बारह रचनाओं के आधार पर विवेच्य काल का नामकरण वीरगाथाकाल किया है, वे हैं-; 1.विजयपाल रासो-नल्हसिंह, ; 2. हम्मीर रासो-शाडरगधर, ; 3. कीर्तिलता-विद्यापति, ; 4. कीर्तिपताका-विद्यापति, ; 5. खुमानरासो-दलपति विजय, ; 6. बीसलदेवरासो-नरपति नाल्ह, ; 7. पृथ्वीराज रासो-चन्दवरदाई, ; 8. जयचन्द्र प्रकाश-भट्ट केदार, ; 9. जयमंथक-जस-चन्द्रिका-मधुकर, ; 9. परमाल रासो-जगनिक, ; 10. खुसरो की पहेलियाँ और ; 11. विद्यापति की पदावली।

इन रचनाओं में से अधिकतर रचनाएँ अप्रामाणिक एवं सूचना मात्र हैं। खुमानरासो को शुक्ल ने पुराना माना था जबकि मोतीलाल नारिमा ने इसका रचना काल स0 1730 और 1760 के बीच का माना है। इसी प्रकार से 'बीसलदेव रासो' भी सन्देहास्पद है। शुक्ल ने भी इस ग्रंथ को कोई महत्त्व नहीं दिया। 'पृथ्वीराज रासो' भी प्रामाणिक रचना है। जगनिक काव्य प्रचलित गीतों के रूप में है, अतः इसे भी सूचना मात्र ही समझना चाहिए। 'हम्मीररासो' तथा भट्ट के द्वारा कृत 'जयचन्द्र प्रकाश' आदि रचनाएँ भी सूचना मात्र है। कहने का तात्पर्य यह है कि जिन ग्रन्थों के आधार पर इनका नाम 'वीरगाथाकाल' रखा गया, वे या तो सूचना मात्र है या बाद में लिखे हुए हैं। दूसरे, शुक्ल ने धार्मिक-साहित्य को उपदेशप्रधान मानकर साहित्य की कोटि में नहीं रखा, किन्तु जिस धार्मिक साहित्य में प्रेरक शक्ति हो और जो रचनाएँ मानव-मन को आन्दोलित करने में समर्थ हो उनका साहित्यिक महत्त्व नकारा नहीं जा सकता। इस दृष्टि से अपभ्रंश की कई रचनाएँ, जो धर्म-भावना से प्रेरित होकर लिखी गई हैं, निस्सन्देह उत्तमकाव्य हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के मत में धार्मिक प्रेरणा या अध्यात्मिक उपदेश को काव्यत्व के लिए बाधक नहीं समझना चाहिए। धार्मिक होने से कोई रचना साहित्यिक कोटि से अलग नहीं की जा सकती। यदि ऐसा मानकर चला जाये तो तुलसी का 'मानस' और जायसी का 'पदमावत' भी साहित्य की सीमा में प्रविष्ट नहीं हो सकेंगे। 'भविष्यत कहा' धार्मिक कथा है, लेकिन इस जैसा सुन्दर काव्य उस युग में अन्यत्रा कहीं नहीं मिलता है। संक्षेप में कहा जायेगा कि सभी धार्मिक पुस्तकों को साहित्य के इतिहास में से नहीं हटाया जा सकता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तत्कालीन उपलब्ध सामग्री के आधार पर ही

नामकरण किया था। नवीनतम खोजों में जो ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं, उनकी प्रवृत्तियों को भी नामकरण निर्धारित करते समय ध्यान में रखना होगा। मोतीलाल मेनारिया का मत रहा है कि जिन रचनाओं के आधार पर 'वीरगाथाकाल' नाम रखा गया है वे किसी विशेष प्रवृत्ति को स्पष्ट नहीं करते, बल्कि चारण-भाट आदि वर्ग विशेष की मनोवृत्ति को ही स्पष्ट करते हैं। यदि इनकी रचनाओं के आधार पर किसी काल का नाम 'वीरगाथाकाल' रखा जाए तो राजस्थान में आज भी वीरगाथाकाल ही है, क्योंकि ये लोग आज भी उत्साह से काम कर रहे हैं।

अपभ्रंश काल: चन्द्रधर शर्मा गुलेरी और धीरेन्द्र वर्मा ने हिन्दी साहित्य के आदिकाल को 'अपभ्रंश काल' की संज्ञा दी है। आदिकाल के साहित्य में अपभ्रंश भाषा की प्रधानता स्वीकारते हुए उन्होंने इस काल को 'अपभ्रंश काल' कहना अधिक समीचीन समझा है। भाषा के आधार पर साहित्य के इतिहास में काल-विभाजन उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। साहित्य के किसी भी काल का नामकरण उस काल की साहित्यिक प्रवृत्तियों अथवा प्रतिपाद्य विषय के आधार पर उचित समझा जाता है। 'अपभ्रंश काल' यह नाम भ्रामक भी सिद्ध होता है क्योंकि इसमें श्रोता या पाठक का ध्यान हिन्दी साहित्य की ओर न जाकर अपभ्रंश साहित्य की ओर आकृष्ट होता है। भाषा-शास्त्र की दृष्टि से भी अपभ्रंश और हिन्दी दो अलग-अलग भाषाएँ हैं। इसलिए पुरानी हिन्दी को अपभ्रंश कहना भी उचित नहीं है।

3. संधिकाल या चारण काल: डा० रामकुमार वर्मा ने हिन्दी साहित्य के इस प्रारंभिक काल को संधिकाल या 'चारणकाल' इन दो नामों से अभिहित किया है। उनकी सम्मति में हिन्दी भाषा का विकास अपभ्रंश से हुआ है किन्तु अपभ्रंश से एक पृथक भाषा के रूप में विकसित होने से पूर्व हिन्दी भाषा एक ऐसी स्थिति में भी रही होगी जिसमें वह अपभ्रंश के प्रभावों से सर्वथा मुक्त न हो सकी होगी। अपभ्रंश भाषा के अंत और हिन्दी भाषा के आरम्भ की इस स्थिति को स्पष्ट करने के लिए डा० वर्मा ने 'संधिकाल' की कल्पना की है। हिन्दी साहित्य के जिस काल को आचार्य शुक्ल ने 'वीरगाथाकाल' कहा है, वहीं पर डा० वर्मा उसे 'चारण काल' कहना उपयुक्त समझते हैं।

4. सिद्ध सामन्त काल: विषय वस्तु की दृष्टि से महापण्डित राहुल सास्कृत्यायन ने इस युग के लिए 'सिद्ध सामन्त युग' नाम प्रेषित किया है। प्रस्तुत नामकरण बहुत दूर तक तत्कालीन साहित्यिक प्रवृत्ति को स्पष्ट करता है। इस काल के साहित्य में सिद्धों द्वारा लिखा गया धार्मिक साहित्य ही प्रधान है। सामन्तकाल में 'सामन्त' शब्द से उस समय की राजनैतिक स्थिति का पता चलता है और अधिकांश चारण-जाति के कवियों की राजस्तुतिपरक रचनाओं के प्रेरणा स्रोत का भी पता चलता है। लेकिन इस 'सिद्ध सामन्त युग' में सभी धार्मिक और साम्प्रदायिक तथा लौकिक रचनाएँ नहीं आती। राहुल सास्कृत्यायन अपभ्रंश और पुरानी हिन्दी को एक ही मानते हैं, साथ ही इस युग की रचनाओं को मराठी, उड़िया, बंगला आदि भाषाओं की सम्मिलित निधि स्वीकार करते हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि 'सिद्ध-सामन्त-युग' नाम भी साहित्य के लिए उपयुक्त नाम नहीं है।

5. बीजवपन काल: आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने इसे बीजवपन काल कहा है। तत्कालीन साहित्य को देखकर यह नाम भी युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता, क्योंकि उसमें पूर्ववर्ती सभी काव्य रूढ़ियों तथा परम्पराओं का सफलतापूर्वक निर्वाह हुआ है और उसके साथ कुछ नवीन प्रवृत्तियों का जन्म हुआ है।

6. आदिकाल: आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इसका नाम 'आदिकाल' सुझाया है। इसे और अधिक स्पष्ट करते हुए कहा है- 'वस्तुतः हिन्दी का 'आदिकाल' शब्द एक प्रकार की भ्रामक धारण की सृष्टि करता है और श्रोता के चित्त में यह भाव पैदा करता है कि यह काल कोई आदिम भावापन्न, परम्परा-विनिर्मुक्त, काव्यरूढ़ियों से अछूते साहित्य का काल है, यह बात ठीक नहीं है। यह काल बहुत अधिक परम्परा प्रेमी, रूढ़िग्रस्त और सजग-सचेत कवियों का काल है। वस्तुतः हिन्दी साहित्य के आदिकाल के नामकरण का विषय अत्यन्त उलझा हुआ है। जब तक हिन्दी की पूर्ण-सीमा निर्धारण नहीं की जाती और जब तक उपलब्ध साहित्य की प्रामाणिकता-अप्रामाणिकता के प्रश्न का समाधान नहीं हो पाता; तब तक किसी निश्चय पर पहुँचना सहज नहीं है। अन्त में कहा जा सकता है कि किसी निश्चित मत के अभाव में प्रस्तुत काल का नामकरण 'आदिकाल' ही अधिक संगत प्रतीत होता है। यह नाम सर्वाधिक प्रचलित हो गया है।

आदिकाल सीमांकन: प्रस्तुत काल के साहित्य की पूर्वापर सीमा को निर्धारित करने का विचार भी कुछ कम विवादास्पद नहीं है। आचार्य शुक्ल ने इस काल का आरम्भ स० 1050 और अन्त संवत् 1375 (993 से 1318 ई०) माना है। महापण्डित राहुल सांस्कृत्यायन ने 8 वीं शती की अपभ्रंशों को पुरानी हिन्दी कह कर अपने सिद्ध सामन्त युग का आरम्भ इसी काल से मान लिया और इस काल की अपर सीमा 13 वीं शती मानी। डा० ग्रियर्सन ने आदिकाल की अन्तिम सीमा 1400 ई० तक मानी है। मिश्रबंधुओं ने एतदर्थ 1389 ई० का वर्ष स्वीकार किया है। डा० रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' इसे 1343 ई० तक ले गये हैं। अधिकांश इतिहासकार शुक्ल जी से सहमत हैं। यह ठीक है कि शुक्ल ने विद्यापति को आदिकाल के अन्तर्गत रखा है, पर विद्यापति का रचना काल 1375 ई० से 1418 ई० के मध्य माना जाता है और इस दृष्टि से आदिकाल की अन्तिम सीमा 1418 ई० निर्धारित की जा सकती है, किन्तु इसमें भी नहीं की। भक्तिकाल में जिन प्रवृत्तियों का विकास हुआ, उनकी भूमिका विद्यापति के पूर्व ही पूर्ण हो चुकी थी। अतः विद्यापति को भक्तिकाल में रखकर चौदहवीं शताब्दी के मध्य को आदिकाल की अन्तिम सीमा मानना ही समीचीन होगा। दूसरे शब्दों में, शुक्ल द्वारा निर्धारित 1318 ई० के बाद भी तीन शताब्दी तक आदिकालीन साहित्य सामग्री का प्रसार माना जा सकता है। अतः हिंदी साहित्य के इतिहास के सीमांकन को हम निम्नलिखित रूपों में बांट सकते हैं-

1. आदिकाल सन् 1000.1400 ई०

2. मध्यकाल सन् 1400.1850 ई०

१ पूर्व मध्यकाल (भक्ति साहित्य) सन् 1400.1650 ई०

२ उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल) सन् 1650.1850 ई०

3. आधुनिक काल सन् 1850 से अब तक।

१ हिंदी गद्य (आरम्भ) सन् 1850.1857 ई०

२ भारतेन्दु काल (पुनर्जागरण) सन् 1857.1900 ई०

३ द्विवेदी काल-जागरण-सुधारकाल सन् 1900.1918 ई०

4. छायावाद काल सन् 1918.1936 ई०

5. छायावादोत्तर काल सन् 1936 से अब तक

१ प्रगतिवाद सन् 1936 से 1942 ई० तक

२ प्रयोगवाद नयी कविता सन् 1942.1953 ई०

३ नवलेखन काल सन् 1953 से अब तक